ये युवा बताते हैं कि वैज्ञानिक प्रतिभा के मामले में भारत की भूमि आज भी कितनी उर्वर है

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण प्रदूषण को लेकर आजकल सारी दुनिया में कुहराम मचा हुआ है. दोनों के बीच एक अंतर्निहित संबंध भी है. पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन तो तब भी होता था, जब मनुष्य का अस्तित्व हीं नहीं था. किंतु पर्यावरण प्रदूषण तो हमारी आधुनिक जीवनशैली और आर्थिक विकास कहलाने वाली औद्योगिक प्रगति की ही देन है. हम देख रहे हैं कि पर्यावरण प्रदूषण से जलवायु परिवर्तन की गति और विकरालता निरंतर बढ़ती ही जा रही है. उसे यदि रोकना और नियंत्रण में रखना है, तो सबसे पहले पर्यावरण प्रदूषण को विश्व स्तर पर घटाने की चिंता करनी होगी.

जर्मनी के उच्चशिक्षा एवं शोध मंत्रालय ने इसी उद्देश्य से, नौ साल पहले, एक अंतरराष्ट्रीय 'हरित प्रतिभा पुरस्कार' (ग्रीन टैलेंट्स अवार्ड) शुरू किया. यह पुरस्कार प्रति वर्ष संसार के ऐसे उदयीमान युवा वैज्ञानिकों को दिया जाता है, जिन्होंने अपने देशों में कोई ऐसी खोज की है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण को घटाने में सहायता मिल सकती है और जो साथ ही दूसरे देशों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण बन सकती है.

भारत सबसे आगे

वर्ष 2017 के पुरस्कारों के लिए विश्व भर के 95 देशों से 602 प्रष्टियां आयी थीं. उनके बीच से निर्णायक मंडल ने 21 देशों के 25 विजेताओं का चयन किया. कोई पहला, दूसरा या तीसरा विजेता नहीं है. सभी एकबराबर हैं. तीन विजेताओं के साथ इस बार भारत सबसे आगे रहा. 16 से 27 अक्टूबर तक सभी 25 विजेता जर्मनी में थे. उन्हें जर्मनी के सबसे प्रसिद्ध शोध संस्थानों को देखने और वहां के वैज्ञानिकों से बातचीत करने का भी अवसर मिला.

जर्मनी की उच्चशिक्षा एवं शोध मंत्री प्रोफ़ेसर योहाना वांका ने, 27 अक्टूबर के दिन, बर्लिन स्थित अपने मंत्रालय में आयोजित एक भव्य समारोह में सभी विजेताओं को बधाई दी, साथ ही, मुख्य पुरस्कार के रूप में सबको एक निमंत्रणपत्र भी दिया. उसमें लिखा है कि वे 2018 में दुबारा जर्मनी आ सकते हैं और अपनी पसंद के किसी भी शोध संस्थान में आगे का शोधकार्य कर सकते हैं. उनकी यात्रा, जर्मनी में प्रवास और शोध का सारा ख़र्च जर्मनी उठायेगा.

भारत के तीन पुरस्कार विजेताओं से इतर भारत के पड़ोसी देश नेपाल के दो और पाकिस्तान के भी एक

प्रतियोगी को जर्मनी का हरित प्रतिभा पुरस्कार मिला है. फ़िजी के एक भारतवंशी युवा वैज्ञानिक को भी पुरस्कार के योग्य आंका गया. इन सब को मिला कर देखा जाये, तो भारतीय उपमहाद्वीप से खून का संबंध रखने वाले कुल सात युवा वैज्ञानिकों का चयन होना यही दिखाता कि वैज्ञानिक प्रतिभा की दृष्टि से भारत-भूमि कितनी उर्वर है.

एक तीर से कई निशाने

वैसे तो कृषि की दृष्टि से भी भारत-भूमि उर्वर ही मानी जाती है. किंतु, बनारस के रमाकांत दुबे देश में खेती को इस प्रकार और अधिक उर्वर बनाना चाहते हैं कि उससे पर्यावरण को भी लाभ पहुंचे. 31 वर्षीय रमाकांत दुबे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पर्यावरण विज्ञान में पीएचडी कर रहे हैं. वे खेती-किसानी की ऐसी सस्ती और सरल विधियां विकसित करने पर काम कर रहे हैं, जो एक ही तीर से कई निशाने साधने-जैसी हैं: निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ ही पैदावार भी लगातार बढ़े, पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, खेतों की उर्वरता में सुधार हो और उत्पादित वस्तुओं के पोषक तत्वों में भी कोई कमी न आए. इस सब का एक सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि जलवायु में परिवर्तन लाने वाली कृषिजन्य प्रदूषणकारी गैसों का उत्सर्जन तेज़ी से घटेगा.

इस समय रासायनिक खादों पर आधारित सघन खेती से कुछ समय के लिए उपज बढ़ती तो है, पर उससे बार-बार बड़े पैमाने पर एक ही प्रकार की फसल (मोनोकल्चर) उगाने की एक ऐसी प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिलता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटने लगती है. रमाकांत दुबे ने जिन विधियों को विकसित करने पर काम किया है, वे ऐसी जैविक खादों के इस्तेमाल पर आधारित हैं, जिन्हें किसान अपने खेतों और घरों के कूड़े-कचरे से स्वयं बना सकते हैं.

अधिक पैदावार, अच्छी गुणवत्ता

सत्याग्रह के लिए एक बातचीत में रामाकांत दुबे ने कहा, 'हम चाहते हैं कि खेती ऐसे तरीके से करें कि पैदावार भी अधिक हो और अच्छी गुणवत्ता भी मिले. पोषक तत्व अच्छी मात्रा में रहें और मिट्टी की उर्वराशक्ति भी बनी रही. रासायनिक उर्वरकों से जल, वायु और मिट्टी, तीनों प्रदूषित हो रहे हैं. हम अभी जिस तरीके से खेती कर रहे हैं, उससे पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुंच रहा है. कार्बन-डाई-ऑक्साइड, अमोनिया, मीथेन इत्यादि गैसें निकलती रहती हैं. दुनिया में 30 प्रतिशत तापमानवर्धक ग्रीन-हाउस गैसें खेती से ही आ रही हैं.'

रामाकांत दुबे का कहना है कि खेती-किसानी से पैदा होने वाली तापमानवर्धक प्रदूषणकारी गैसों को कम करने की उन्होंने कई नयी विधियां विकसित की हैं. वे बताते हैं, 'चार साल के अध्ययन में मैंने देखा कि यदि आप कई सारी फ़सलों को एक साथ उगाते हैं, जैसे कि उसी खेत में मटर के साथ चना या मटर के साथ सरसों, तो जोताई की गहराई कम कर सकते हैं. इस समय हम सिंचाई के पानी को पूरे खेत में फैला देते हैं. हमें पानी धीरे-धीरे टपकाने वाली 'ड्रिप' सिंचाई करनी चाहिये. इससे पानी की काफ़ी बचत होगी.'

रासायनिक खाद करे बर्बाद

रामाकांत दूबे ने मिट्टी में कुछ ऐसे सूक्ष्म जीवाणुओं (माइक्रो ऑर्गैनिज़्म) की पहचान की है, जिन्हें जैविक खाद (बायो-फ़र्टिलाइज़र) कहते हैं. वे बताते हैं, 'उनके इस्तेमाल से मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ती है और रासायनिक खाद नहीं होने से मिट्टी पूरी तरह प्राकृतिक बनी रहती है. प्राकृतिक जैविक खाद से पैदावार की भी और पोषक तत्वों की भी मात्रा बढ़ती है. इन तीन-चार विधियों को एकसाथ मिला कर हम दो-तीन फसलें भी ले सकते हैं, उपज भी बढ़ा सकते हैं, पोषक तत्व भी बढ़ा सकते हैं और तापमानवर्धक गैसों का उत्सर्जन भी कम कर सकते हैं.'

रामाकांत दुबे के मुताबिक उन्होंने उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, सुल्तानपुर और वाराणसी में चार वर्षों तक अपनी शोधयोजना पर काम किया. वे कहते हैं, 'हमारे प्रयोग में पांच अलग-अलग फसलें थीं, जैसे मक्का, उड़द, सरसों और चना. हमने वे सारे तरीके आजमाये जो मैंने बताये हैं. हमने सूक्ष्म-जीवाणुओं वाली जैविक खाद के अतिरिक्त खाद-मिट्टी (ह्यूमस) और बायोचार (जैव-कोयला) का भी उपयोग किया. बायोचार पेड़-पौधों वाली या अन्य जैविक सामग्री अथवा कचरे को मिला कर, बिना ऑक्सीजन के, 500-600 डिग्री सेल्सियस तापमान पर झुलसाने से बनता है. खेतों में उसका उपयोग करने से खेतों का कूड़ा-कचरा हवा में सड़ कर तापमानवर्धक प्रदूषण पैदा करने के बदले ज़मीन में दब जाता है और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक बनता है.'

घनी धुंध से भी सहज छुटकारा

रामाकांत दुबे की विधि खेती-किसानी के लिए ही लाभकारी नहीं है, उस घनी धुंध (फ़ॉग) से भी पिंड छुड़ाने की एक कारगर विधि बन सकती है, जो सर्दियों के दस्तक देते ही दिल्ली और आस-पास के क्षेत्रों में पसर जाती है. वे कहते हैं, 'आजकल मशीनों से फसल की कटाई करते हैं और उससे जो बायोमास (जैवभार, जैविक कचरा, पराली) बचता है, उसे खेतों पर ही जला देते हैं. इससे कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस पैदा होती है. राख पैदा होती है. दूर-दूर तक वायुमंडल प्रदूषित होता है. उसे जलाने के बदले खेतों पर ही छोड़ देना चाहिये. दो-तीन बार जोताई कर देने पर वह मिट्टी के साथ मिल कर सड़ जाता है, विघटित हो जाता है और मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाता है. दूसरा विकल्प है उसे कम्पोस्ट बनने के लिए कहीं जमा कर देना. वह कूड़ा नहीं है, किसान का जैविक धन है. प्राकृतिक स्रोत है. उसे जलाना तो कभी नहीं चाहिये.'

सच्चाई भी यही है कि फसलों और पेड़-पौधों वाले जैविक कचरे को जलाना, घर फूंक कर आग तापने के समान है. भारत में खेती-किसानी से हर साल 70 करोड़ टन से अधिक ऐसा जैविक ढेर पैदा होता है, जिसे कूड़ा समझ कर फेंक या जला दिया जाता है. उससे जैविक चारकोल या कंपोस्ट ही नहीं, एथेनॉल (इथाइल अल्कोहल) नाम का ईंधन भी बनाया जा सकता है. जर्मनी जैसे देशों में कारों के पेट्रोल में 10 प्रतिशत एथेनॉल मिला होता है. इससे और नहीं, तो कम से कम 10 प्रतिशत पेट्रोल की ही बचत हो जाती है.

अल्गी से ईंधन और बिजली

31 वर्षीय जयति त्रिवेदी इंजीनियरिंग में पीएचडी कर रही हैं. भारत की 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद' (सीएसआईआर) के देहरादून स्थित 'इंडियन पेट्रोलियम इस्टीटचूट' में वे जीवविज्ञान

और कृषि विज्ञान से लेकर रसायनशास्त्र ओर पर्यावरण विज्ञान तक की विज्ञान की कई विशिष्ट शाखाओं को समेटते हुए, सूक्ष्म एल्गी (शैवाल) से जैविक ईंधन और बिजली बनाने की तकनीक विकसित करने में जुटी हैं.

एल्गी का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह पुनरुत्पादी है और उसकी किसी खेतिहर फसल से कोई होड़ नहीं है. जयति त्रिवेदी एल्गी के ढेर (बायोमास) से ईंधन या ऊर्जा प्राप्त करने की विधियों के लिए पर्यावरण-सम्मत जैविक एन्ज़ाइम (किण्वक) इस्तेमाल करती हैं. उनका लक्ष्य है जैव-ऊर्जा देने वाले ऐसे उत्पाद बनाना, जो भविष्य में सब के लिए सुलभ और उपयोगी सिद्ध हों.

खुद खत्म होने वाला प्लास्टिक

उन्होंने पेड़-पौधों वाली सूखी हुई वानस्पतिक सामग्री के ढेर से 'एल (+) लैक्टिक ऐसिड' (दुग्धाम्ल) बनाने की एक जैव-तकनीकी प्रक्रिया को पेटेंट भी करवाया है. यह अम्ल 'पॉली लैक्टिक ऐसिड' कहलाने वाले एक ऐसे प्लास्टिक को बनाने के काम आता है, जो इस्तेमाल के बाद, पर्यावरण को कोई नुकसान पहुंचाये बिना, समय के साथ स्वयं ही विघटित हो जाता है. कतिपय तरल पदार्थों के प्रकाशीय ध्रुवीकरण गुण (ऑप्टिकल पोलाराइज़ेशन) के अनुसार लैक्टिक ऐसिड के दो समस्थानिक (आइसोमर) होते हैं. एक को एल (+) और दूसरे को डी (–) लैक्टिक ऐसिड कहते हैं. जयति त्रिवेदी की मुख्य रुचि अपने शोधकार्य के क्षेत्र में जर्मनी में उपलब्ध नवीनतम तकनीक को जानने में है.

पेट्रोल की जगह एल्गी !

सत्याग्रह के लिए बातचीत में जयति त्रिवेदी ने बताया कि वे जिस परियोजना पर काम कर रही हैं उसका मुख्य उद्देश्य सूक्ष्म एल्गी के ढेर (बायोमास) से ऐसा ईंधन प्राप्त करना है, जो इस समय के प्रचलित ईंधनों का – यानी पेट्रोल, डीज़ल इत्यादि का – स्थान ले सके. वे कहती हैं, 'नया ईंधन इन प्रचलित ईंधनों की अपेक्षा साफ़-सुथरा होगा. वह भी तरल ईंधन ही होगा. उसके साथ एक दूसरा लाभ यह होगा कि उसे (घरों आदि से निकलने वाले) ग़ंदे पानी में सूक्ष्म एल्गी को उगा कर प्राप्त किया जायेगा. इस प्रकार ग़ंदा पानी भी स्वच्छ हो जायेगा और हमें एक साफ़-सुथरा ईंधन भी मिलेगा. अल्गी से हम महंगे किस्म के कुछ रासायनिक उत्पाद भी अलग से बना सकते हैं.'

जर्मनी में दो सप्ताह के अपने अनुभवों के बारे में जयति त्रिवेदी का कहना था, 'यहां काफ़ी कुछ नया सीखने को मिला है. भारत में हमारी दृष्टि थोड़ी संकीर्ण हो जाती है. यहां जर्मनी में हमें पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और प्लास्टिक वाली वस्तुओं से होने वाले नुकसानों के बारे में बहुत सारी बातें जानने को मिलीं. भारत लौटने पर हमें देखना होगा कि हम इन बातों को किस तरह अपना सकते हैं.'

भारत में प्रतिभा बहुत ज्यादा है

भारत और जर्मनी के युवा वैज्ञानिकों और दोनों देशों में उलब्ध शोध-सुविधाओं के बारे में जयति त्रिवेदी का मानना है कि भारत में प्रतिभा बहुत ज्यादा है और छात्र भी काफ़ी मेधावी हैं. वे कहती हैं, 'आधारभूत

सुविधाओं की दृष्टि देखा जाये तो इनके (जर्मनों के) पास जो उपकरण इत्यादि हैं, वे ज़्यादा अचूक और सटीक हैं. जर्मन प्रयोगशालाएं भारतीय प्रयोगशालाओं की अपेक्षा कहीं बेहतर ढंग से सुसज्जित हैं. तब भी, बौद्धिक स्तर पर भारत किसी से पीछे नहीं है.'

भारत की तीन 'हरित प्रतिभाओं' में भुवनेश्वर के 'खनिज पदार्थ और सामग्री तकनीक संस्थान' (इंस्टीटचूट ऑफ़ मिनरल्स ऐंड मैटीरियल्स टेक्नॉलॉजी, आईएमएमटी) की प्रतीक्षा श्रीवास्तव, केवल 25 वर्ष आयु के साथ, सबसे युवा पुरस्कार विजेता कहलायेंगी. उन्होंने 'बायोटेक्नॉलॉजी' (जैव तकनीक) में 'एमटेक' किया है और अब ऑस्ट्रेलिया के तस्मानिया विश्वविद्यालय में पीएचडी करना शुरू किया है.

पानी साफ करने की सस्ती तकनीक

प्रतीक्षा श्रीवास्तव ने भी इंजीनियरिंग और विज्ञान की कई विशिष्ट शाखाओं को आपस में जोड़ते हुए ग़ंदे पानी के परिशोधन यानी उसे साफ करने की एक सस्ती और सरल तकनीक विकसित की है. इसमें पानी के परिशोधन के लिए रासायनिक सामग्रियों की कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी. इस तकनीक के आधार पर देहातों में ऐसे शौचालय भी बनाये जा सकेंगे, जिनमें न तो नये पानी की ज़रूरत पड़ेगी, न ही कोई मल इत्यादि बचेगा और न ही रात में अंधेरा रहेगा.

अपने अनोखे शोधकार्य का वर्णन करते हुए प्रतीक्षा श्रीवास्तव ने बताया, 'मेरा विषय है ग़ंदे पानी का परिशोधन (वेस्ट वॉटर ट्रीटमेन्ट). इसकी एक तकनीक है जिसे हम 'कंन्स्ट्रक्टेड वेटलैंड' (मनुष्य-निर्मित नमभूमि) कहते हैं. गीली जगहें तो बहुत-सी होती हैं, जो पहले से ही गीली हैं. इसी तरह, हर जगह गीली ज़मीन भी नहीं होती. हम ग़ंदे पानी को साफ़ करने के लिए अलग से एक गीली जगह बनाते हैं. हमारी तकनीक विकासशील देशों के लिए बहुत सस्ती और उपयोगी है. इसमें कोई रसायन नहीं लगता, कोई बिजली नहीं लगती और ख़र्च भी नहीं के बराबर है.'

वेटलैंड विधि

जलशोधन के उद्देश्य से वेटलैंड बनाने के वैसे तो कई प्रकार एवं तरीके हैं. सबसे सीधा-सादा और सस्ता तरीका यह है कि किसी बस्ती, घर, कारख़ाने या संस्थान की जगह पर एक मीटर गहरा ऐसा गड्ढा खोदा जाता है, जिसकी लंबाई-चौड़ाई ग़ंदे पानी की आवक पर निर्भर करती है. गड्ढे को भीतर से प्लास्टिक की चादर से सील कर दिया जाता है, ताकि गंदे पानी का ज़मीन में रिसाव नहीं हो सके. इसके बाद गड्ढे को छोटी बजरी से ढक कर बजरी के ऊपर नरकट या उसके जैसे गुणों वाला कोई पौधा लगाया जाता है.

गड्ढे में बजरी छलनी का काम करती है. नरकट की जड़ें पानी में पाये जाने वाले ढाई सौ प्रकार के बैक्टीरियों का सफ़ाया करने में सहायक बनती हैं और ऑक्सीजन की मात्रा को भी बढ़ाती हैं. गंदा पानी कुछ ही दिनों में काफ़ी हद तक स्वच्छ पानी के रूप में ऊपर आ जाता है. इस पानी को पिया तो नहीं जा सकता, पर बाक़ी लगभग सभी कामों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है.

जलशोधन और बिजली भी

प्रतीक्षा श्रीवास्तव का कहना है कि जलशोधन की इस प्रचलित नमभूमि प्रणाली के साथ समस्या यह है

कि वह काफ़ी धीमी है और बहुत कारगर भी नहीं है. वे बताती हैं, 'इस कमी को दूर करने के लिए हमने एक अलग तकनीक विकसित की है, जिसे 'कंस्ट्रक्टेड वेटलैंड माक्रोबियल फ्यूल सेल' (निर्मित नमभूमि वाला जीवाणु ईंधन सेल) कहते हैं. इससे कृत्रिम नमभूमि की कार्यकुशलता 10 गुना बढ़ जाती है. हम चाहते थे कि जलशोधन के साथ-साथ बिजली भी बने. इसलिए हमने जीवाणु ईंधन-सेल को कृत्रिम नमभूमि के साथ जोड़ दिया. इससे जलशोधन प्रणाली की कार्यकुशलता 10 गुना बढ़ गयी और साथ में बिजली भी पैदा होने लगी. इस बिजली से हम घरों की सारी बत्तियां अभी तो नहीं जला सकते, पर इतना ज़रूर हो पाया है कि एक एलईडी (लाइट एमिटिंग डायोड / प्रकाश उत्सर्जी डायोड) बत्ती जला सकते हैं. यह मेरा योगदान था.'

ग़ंदे पानी को स्वच्छ बनाने के साथ-साथ बिजली भला बनती कैसे है, इसे समझाते हुए प्रतीक्षा बताती हैं, 'कृत्रिम नमभूमि में जो अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु होते हैं. वे पानी की ग़ंदगी का, उसकी अशुद्धियों का ऑक्सीकरण करते हैं. इसलिए हम कृत्रिम नमभूमि में ऐसी विद्युत-सुचालक सामग्री डालते हैं, जो ऑक्सीकरण की इस क्रिया से मुक्त हुए इलेक्ट्रॉन कणों को अपना सकें. सुचालक सामग्री को हम एक तार से जोड़ देते हैं. इलेक्ट्रॉन कणों के नीचे से ऊपर जाने से जो 'पोटेंशियल डिफ़रेंस' (विभवांतर) बनता है, उसकी वजह से हम बिजली पैदा कर पाते हैं और नमभूमि एक बैटरी-सेल जैसी बन जाती है.'

'ज़ीरो डिसचार्ज टॉयलेट'

प्रतीक्षा श्रीवास्तव और भुवनेश्वर में उनकी टीम के साथियों के लिए यह सब इतना उत्साहजनक था कि उन्होंने इन जानकारियों के आधार पर, लगे हाथ, एक ऐसा टॉयलेट (शौचालय) भी बना डाला, जिसे वे 'ज़ीरो डिसचार्ज टॉयलेट' (शून्य अपशिष्ट शौचालय) कहते हैं. उनका कहना है कि इस शौचालय में 'तरल या ठोस, कुछ भी शेष नहीं बचेगा. मूत्र या फ्लश के पानी जैसा जो कुछ भी तरल रूप में होगा, कृत्रिम नमभूमि के द्वारा परिशोधित हो कर फ्लश के पानी के तौर पर पुनः इस्तेमाल लायक बन जायेगा. मल को जीवाणुओं की सहायता से अपघटित कर बायोगैस में बदला जा सकता है.'

जर्मनी के अपने अनुभवों के बारे में प्रतीक्षा श्रीवास्तव का भी यही कहना है कि यहां शोध-सुविधाएं बहुत उन्नत किस्म की हैं. वे बताती हैं, 'अगले वर्ष हम फिर आ सकते हैं, जहां चाहें, वहां और किसी के भी साथ काम कर सकते हैं. अभी-अभी मैंने ऑस्ट्रलिया के तस्मानिया विश्वविद्यालय में पीएचडी करना शुरू किया है. यह अभी तय नहीं किया है कि कहां आऊंगी, पर तीन महीनों के लिए दुबारा यहां आ रही हूं.'

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत में युवा वैज्ञानिक प्रतिभाओं की कमी नहीं है. कमी यदि है, तो उन्हें पहचान कर पल्लवित होने के अवसर प्रदान करने की.

साभार- https://satyagrah.scroll.in से